शब्द–ब्रह्म
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
E ISSN 2320 – 0871
17 सितम्बर 2023
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

समकालीन अमूर्तकला में प्रयोगधर्मिता

डॉ. अचल अरविन्द
सहायक आचार्य
माँ भारतीय पी.जी. कॉलेज
कोटा, राजस्थान, भारत

शोध संक्षेप

आज संसार भर में अमूर्तकला का प्रचार हो गया है। वर्तमान समय का शायद ही कोई चित्रकार हो जो इस नयी चेतना से प्रभावित न हुआ हो। भारत वर्ष में करीब-करीब सभी नये चित्रकारों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। कलाविद् सुरेश शर्मा के अनुसार प्रयोगधर्मिता मानव की सहज क्रियाओ में से एक है। रंगों का संचालन वस्तुओं अथवा सामग्री का प्रयोग, कार्य करने की विधि आदि में हमें जिन प्रतिक्रियाओं से गुजरना होता है वे सभी प्रयोगाश्रित होती है। प्रयोगों की पद्धतियाँ जब विधिवत् रूप ले लेती है तो परम्परा अथवा रूढ़ी कही जाती है। प्रयोगधार्मिता कलाकार की परिस्थितिजन्य परवशता भी है। अर्थात् वर्तमान के प्रयोगधर्मी कलाकार नयी सामग्री के प्रति सजग रहकर नये प्रयोगों में निरन्तर कार्य कर रहे हैं। आधुनिक कलाकारों ने थोड़ी तथा मोटी तूलिका द्वारा गाढ़े रंगों के स्पर्शों से तूलिका संचालन की पद्धति का दर्शकों को भी मानसिक अनुभव कराने का प्रयत्न किया है। प्रयोगधर्मिता, कला व समाज के हर क्षेत्र में निरन्तर चल रही है। कलाकार तथा कला रसिक समाज, दोनों को मिलाकर ही कला संस्कृति का स्वरूप सृजनात्मक हो रहा है। और प्रयोगों की कोई सीमा भी नहीं बांधी जा सकती और न ही कल्पना तथा सृजन शक्ति के स्रोत से कलाकारों को बाँधकर रखा जा सकता है। अतः कला के अंतर्संबंध में कला की रूप सृष्टि में प्रयोगों को सच्चे हृदय से स्वीकार करें।

बीज शब्द : *अजस्त्र, क्षुद्रतम, त्याज्य, अजस्त्र विक्षप्तता, प्रयोगाश्रित।*

प्रस्तावना

कला के इतिहास में अनेक आन्दोलन आये और उन्होंने किसी न किसी रूप में कला को प्रभावित किया। प्रत्येक काल अपने युग की कला के लिए आधुनिक रहा होगा, किन्तु आधुनिक कला एक ऐसी कलात्मक क्रान्ति लायी जिसने कलाकारों के दृष्टिकोण में अभूतपूर्ण परिवर्तन किया जिसके विभिन्न रूप देखे जा सकते हैं। वैसे ही एक रूप अमूर्त कला है, जिसने आधुनिक कलाकारों को अपनी और आकर्षित किया है और कलाकार उसमें दिन-प्रतिदिन प्रयोग कर नवीन सृजनात्मकता का निर्माण कर रहे हैं।

मुख्य पाठ

कलाविद् सुरेश शर्मा के अनुसार प्रयोगधर्मिता मानव की सहज क्रियाओं में से एक है। अंगों का संचालन, वस्तुओं अथवा सामग्री का प्रयोग, कार्य करने की विधि आदि में हमें जिन प्रतिक्रियाओं से होकर गुजरना होता है वे सभी प्रयोगाश्रित होती है। इस अवधि में हम जो कुछ भी सीखते हैं वह एक और किसी कार्य को सम्पन्न करने की ठीक-ठीक विधियों अथवा पद्धतियों में कुशल बनाता है, वहीं दूसरी ओर उनसे सम्बन्धित ज्ञान की वृद्धि भी करता है। बाल्यावस्था में इसे प्रयत्न एवं त्रुटि पद्धति के द्वारा ज्ञानार्जन की

श्रेणी में रखा जाता है। प्रयत्न की एक स्थिति वह है जिसमें हम केवल उतनी ही रूचि लें जिससे कि हम दूसरों के समान कार्य कुशल अथवा सूचना-सम्पन्न बन जाएँ। परन्तु हमारा मन और मस्तिष्क केवल इतने से ही सन्तुष्ट नहीं होता। हम किसी विशेष क्षेत्र में दूसरों से आगे निकलने की आकांक्षा रखते हैं। यही जब महत्वकांक्षा बन जाती है तो हम विशेष प्रयत्नशील हो जाते हैं। प्रयत्नशीलता, महत्वकांक्षा अथवा साधना की कोई सीमा नहीं होती है। प्रकृति के रहस्यों का भी कोई अन्त नहीं है। सृष्टि के विस्तार में हम अपनी अल्पतम अथवा यों कहें कि क्षुद्रतम सामर्थ्य को लेकर प्रकृति पर विजय का दंभ करते हैं, परन्तु तत्काल ही नये रहस्यों का अंत भंडार किसी गुप्त खजाने की भाँति उपस्थित हो जाता है, जिसका द्वार कहने से नहीं खुलता। वह त्याग-तपस्या और साधना करने वालों को ही यथायोग्य पुरस्कृत करता है। प्रकृति के रहस्यों की एक झलक पा जाने वाला भी निरन्तर आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है, ये प्रयत्न ही 'प्रयोग' बन जाता है। प्रयोग इस अर्थ में कि इनसे किसी न किसी प्रकार से कुछ-न-कुछ नयेपन अथवा विचित्रता के द्वार खुलते हैं। वह नयापन ही प्रयोगकर्ता की आनन्दानुभूति का कारण बनता है। इस प्रकार प्रयोगधर्मिता मानव जीवन के सभी क्षैत्रों में सक्रिय व परिलक्षित होती है।

प्रयोगों की पद्धतियाँ जब विधिवत् रूप ले लेती हैं तो परम्परा अथवा रूढ़ि कही जाती है। सामाजिक जीवन के प्रतिदिन के व्यवहार में ये रूढ़ियाँ तथा परम्पराएँ प्रमुख भूमिका का निर्वाह करती हैं। परन्तु प्रकृति की क्षेत्र तथा सामाजिक जीवन में अनेक परम्पराएँ तथा रूढ़ियाँ शिथिल अथवा अर्थहीन हो जाती हैं। प्रयोगों से प्राचीन परम्पराओं को नव-जीवन मिलता है तथा नयी परम्पराएँ स्थापित होती हैं। इस प्रकार प्रत्येक युग में, मानव सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में, परम्परा तथा प्रयोग दोनों चलते रहते हैं। दोनों में द्वन्द्व भी होता है और समझौता भी।

जीवन के अधिकाधिक क्षेत्रों में कलात्मकता का प्रवेश ही कला-संस्कृति है व सामान्य अर्थ में किसी कार्य को कुशलतापूर्वक सम्पन्न करने की विधि प्रयोग के नाम से जानी जाती है। पर सीमित अर्थ में ललितकलाओं के सन्दर्भ में भी प्रयोगात्मकता का विचार किया जाता है। कलात्मक प्रयोग का क्षेत्र बहु आयामी है। कलाविचार और कलासृजन से लेकर कला रूपों की विभिन्न विधाओं के उपयोग तक उसका विस्तार है। सर्जक के पक्ष में इनका जो क्रम है उसके ठीक विपरित क्रम कला-रसिक के पक्ष में है। कलाकार किसी नये दृष्टिकोण से विचार को वह कलाकृति के माध्याम से दर्शकों तक प्रेषित करता है, दर्शक अथवा कला रसिक उससे सहमत होते हैं तो उसका स्वागत करते हैं तथा असहमत होने पर विवाद की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। समाज ऐसी कलाकृति का उपयोग नहीं करता। अतः समाज की कला-संस्कृति उससे अप्रभावित रहती है। इसका मूल कारण समाज की परम्परावादी सोच है जो नये विचार अथवा प्रयोगों को सहसा स्वीकार नहीं करती। परन्तु आधारभूत सत्य है कि एक पीढ़ी से दूसरी में अर्थात पुरानी पीढ़ी के विचारों में कुछ न कुछ अन्तर अवश्य आता है। जो लोग पुराने अथवा परम्परावादी विचारों के पक्षधर होते हैं वे भी नयेपन को स्वीकार नहीं करना चाहते। नये तथा पुराने में व्यर्थ की प्रतिस्पर्धा आरम्भ हो जाती है। यह प्रतिस्पर्धा कोई नई बात नहीं है। अपनी रचनाओं को स्थापित करने में सभी को इसका सामना करना पड़ता है और बड़ी विनम्रता से अपना मत प्रस्तुत करना होता है जो कुछ पुराना है वह सब प्रशंसनीय नहीं है तथा जो कुछ नया है वो सब त्याज्य नहीं है। लोग नये की परीक्षा करके तो देखें। जब इस नवीनता को गुण की दृष्टि से देखें तो इसकी विशेषताएँ समझ में आती

है। जब इसे दोष समझें तो इसमें कमियाँ दिखाई देने लगती हैं। आवश्यकता केवल कलाकार के मानसिक रूप से स्वस्थ होने की है। परन्तु मानसिक स्वास्थ्य को सामाजिक दृष्टि से विक्षिप्तता की स्थिति से नहीं जोड़ना चाहिए। वॉन गॉग की कला इसका सर्वोत्तम उदाहरण है। वानॅ गॉग समान प्रयोग इससे पूर्व अथवा पश्चात कोई भी नहीं कर पाया। कला चित्रकार सुरेश शर्मा का विचार है कि यदि वे कुछ समय और जीवित रह जाता तो चित्र के ऊपर हाशिये को छूते हुए या उससे भी आगे निकलते हुए विस्तृत सागरीय दृश्यों की एक अद्भुत झाँकी समाज के सामने रख जाते, जो कला जगत की अमूल्य निधि होती। शर्मा के विचारों में कलाकार के दो पहलू होते है-संयम और प्रयत्नशीलता। सम्भवतः प्रयोगधर्मी सजृक के लिए ये दोनों अनिवार्य हैं।

दस वर्ष तक संयमपूर्व एकान्त में प्रयोग करते रहने के उपरान्त ही अपनी उपलब्धि से संतुष्ट होकर ही आपने ज्यामितीय चित्रों का प्रदर्शन किया था। दृश्यमान संसार की आपकी जो यथार्य अनुभूति थी उसे निश्चित प्रयोगों के आधार पर ऐसे निश्चित सिद्धान्त तक पहुँचाने में उन्होंने जो प्रयत्न किया था उसमें संयम और अपने लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील, दोनों स्पष्ट प्रतिबिम्बित होते हैं। संयम और प्रयत्नशीलनता को हम आधुनिक भाषा अथवा परिभाषा में अतिबद्धता, सम्पूर्ण समर्पण अथवा सृजन की उत्तेजना ¼Thrill of Creation) भी कह सकते हैं।

शर्मा के अनुसार आपके प्रयोगों के पीछे सृजनातमक सोच थी। स्थापित परम्पराओं के दायरे में ही आपने अनुभूतियों को नये प्रयोगों की ओर मोड़ा था और सृजन तथा प्रदर्शन परम्परागत रीतियों से हटकर किया। प्रयोगधर्मिता के पीछे जो सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक कारण होते हैं वे केवल विषयों को ही नहीं, कला की तकनीक को भी प्रभावित करते हैं। सामन्ती समाज-व्यवस्था में कला का जो स्वरूप रहा है उसे क्लासीकल (अभिजात) कहा गया। लोककला इससे पर्याप्त भिन्न रही है। धार्मिक कला सामन्ती समाज में पहुँचती है तो उसका रूप अलग होता है और ग्रामीण समाज में पहुँचने पर लोक कला के समान हो जाती है फिर भी धार्मिक कला की कुछ निजी विशेषताएँ है जैसे बौद्ध कला में शैलीगत सौम्यता है। ईसाई कला सौम्य रही है। इन कलाओं में कलाकार ने वातावरण तथा परिस्थितियों के अनुसार ही प्रयोग किये है। प्रयोगधर्मिता कलाकार की परिस्थितिजन्य परवशता भी है। सामान्यतः कलाकार तथा रसिक कला परम्परागत अथवा पहले से सामाज में आ रही सामग्री एवं तकनीक पर ही आश्रित रहते हैं। परन्तु प्रयोगधर्मी कलाकार नयी सामग्री के प्रति सजग रहकर नये प्रयोगों में प्रवृत होते हैं। युग परिवर्तन से जब जीवन के प्रति दृष्टिकोण बदलता है तो सम्पूर्ण दृश्यमान जगत को नयी दृष्टि से देखने की आवश्यकता प्रतीत होती है। नवीन दृष्टि में जीवन के नए रंग-ढंग नये आचार-विचार तथा रहन-सहन भी महत्वपूर्ण हो जाते हैं जिनमें युगानुकूल सामग्री भी होती है। जब जीवन के अन्य क्षेत्रों में नवीन सामग्री का प्रयोग हो तो फिर कलाकार केवल परम्परागत सामग्री तक ही सीमित क्यों रहे। नयी सामग्री का उपयोग करने वाली कला नये समाज के लिए अधिक रूचिकर होगी। अतः कलाकार को अपने युग में प्रचलित नवीन सामग्री के प्रयोग की सम्भावनाओं की तलाश निरन्तर जारी रखनी चाहिए। इससे कला के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण के साथ-साथ विषय वस्तु में भी अन्तर आता है।

जब कला सामग्री की बात करते हैं तो माध्यमों की विविधता और कलाकृति के स्थायित्व पर ध्यान जाता है। चित्रों के रंगों की चमक बनाये रखने अथवा बढ़ाने की दृष्टि से अनेक प्रयोग किये गये। टैम्परा

तथा जलरंगों की आभा से भिन्न तैल माध्यम में भी चमक के प्रति कलाकार प्रयत्नशील रहे और वार्निशिंग तथा ग्लेजिंग का प्रचलन हुआ। सिरेमिक तथा रंगीन काँच के टुकड़ों को स्वर्णरजित भित्तियों पर चिपका कर चमक को आकर्षक रूप दिया गया। इससे भी अधिक चमक काँच की खिड़कियों के द्वारा उत्पन्न की गयी जहाँ प्राकृतिक प्रकाश स्वयं माध्यम का एक अभिन्न अंग बना। जिस प्रकार आधुनिक युग में मूर्तियाँ मन्दिरों व भवनों से बाहर निकलकर खुले स्थानों पर लगायी जाने लगीं, उसी प्रकार भवनों के आन्तरिक प्रकाशन को छोड़कर कलाकारों ने खुली धूप के प्रकाश पर ध्यान दिया, जिससे क्रान्तिकारी आन्दोलनों तथा विभिन्न प्रयोगों को जन्म हुआ।

प्रकाशीय प्रभावों का एक अन्यविधि से नेत्रीय कला में प्रयोग हुआ, जिसमें गति के अंकन के लक्ष्य को मात्र चित्रण से नहीं बल्कि प्रकाश के साथ मिश्रण करके यंत्रों की सहायता से प्रत्यक्ष प्रस्तुत किया गया। लोककला में शुद्ध अथवा मिश्रित कला जैसा कोई वर्गीकरण नहीं है। अभिजात्य कला में इस पर ध्यान दिया गया है। परन्तु आधुनिक कला में इस प्रकार के प्रयोग अधिकाधिक लोकप्रिय होते जा रहे हैं जहाँ मूर्ति, चित्र, ग्राफिक, मोन्टोज, कोलाज आदि का समन्वित प्रयोग होने लगा है। ऐसे प्रयोगों में मिक्स मीडिया तो पुरानी बात होती जा रही है। यही नहीं, चित्र मे आकृति के साथ-साथर मिल जुलकर गीत-गाते रहने की परम्परा ने चित्र में काव्य लेखन तथा समाचार पत्रों की कतरने आदि चिपकाने का रूप ले लिया है। अनपढ़ समाजों की मौखिक क्रिया का शिक्षित समाजों में लिखित रूप मिल रहा है। कलाकृति से तादात्म्य का स्वरूप भी प्रयोगों द्वारा परिवर्तित होता जा रहा है। प्रागैतिहासिक गुफाओं व पूजाग्रहों के अँधेरे स्थानों पर देखी जाने वाली आकृतियाँ भय तथा दूरी का भाव उत्पन्न करती है। शीतल रंगों तथा कोमल रेखाओं आदि के द्वारा विश्रान्ति और तीव्र रंगों तथा कठोर रेखाओं द्वारा हलचल के भाव उत्पन्न करने का प्रयत्न एक परम्परागत विधि रही है। आधुनिक कलाकार ने अपनी मन स्थिति को व्यक्त करने वाली चित्रण विधि में दर्शक को संलिप्त करने का प्रयत्न किया है।

आधुनिक कलाकारों ने चौड़ी तथा मोटी तूलिका द्वारा गाढ़े रंगों के स्पर्शों से तूलिका संचालन की पद्धति का दर्शकों को भी मानसिक अनुभव कराने का प्रयत्न किया है। इससे भी आगे बढ़कर कलाकारों ने दर्शकों के समक्ष चित्र रचना करके आरम्भ से अन्त तक की पूरी सृजन प्रक्रिया में सही प्रकार का अनुभव दर्शकों को कराने का प्रयत्न किया है। इस प्रक्रिया में कलासृष्टा और कला रसिक दोनों ही सृजन के प्रवाह में साथ-साथ छलांग लगाते हैं, तैरते हैं, डूबते हैं तथा अन्त में किनारे तक पहुँच जाते हैं।

अब तक कला को स्थानाश्रित माना जाता था पर अब वह काल अर्थात् गति के क्षेत्र में भी प्रविष्ट हो गयी है। नशे की गोलियों के समान इसका एक रूप मनोक्रियात्मक कला में भी देखा जा सकता है और विशेष प्रयोगों का प्रचलन आधुनिक कला के साथ ही हुआ है घास, रेशे, बाल, रूई, कपड़ा तथा स्पंज का तूलिका के रूप में प्रयोग करने से ही कलाकार संतुष्ट नहीं हुए। बल्कि आज तो मानव शरीर को ही तूलिका बना डाला और सौन्दर्य प्रतियोगिताओं में भाग लेने वाली बालाओं के शरीर पर रंग छिड़क कर भूमि पर बिछे कागजों के रोल पर उन्हें लुढ़काकर अथवा हाथ-पैर फैलाये हुए उनके शरीर को क्रेन से उठाकर धीरे-धीरे कागज पर रखकर या कुछ इंच ऊँचाई से गिराकर रंगे हुए शरीर की छाप कागज पर लेने की तकनीक प्रयुक्त की जो लिविंग ब्रश के नाम से बहुत चर्चित हुई है। पिछली शताब्दी में साठ के दशक में इस माध्यम का एक और प्रयोग सामने आया, कला ने ब्लेड से स्थान-स्थान पर काटकर रंजित

शरीर को अलग-अलग कोणों, मुद्राओं तथा विधियों से बार-बार दीवार पर मारकर दीवार पर रक्त के विशेष चिह्न बनाये। इस प्रकार की चेष्टाओं से दर्शकों ने इसे खूब सराहा और प्रशंसा की। परन्तु इस प्रकार के प्रयोग कलाकारों की सनक के अतिरिक्त कुछ भी नहीं थे और इसका अधिक अनुकरण भी नहीं हुआ। अतः क्षणक्षण परिवर्तित होते हुए संसार को प्रयोगधर्मी कलाकर बालकों जैसे सहज दृष्टि से देखता है। ऐसे संसार को जिसे सम्बन्ध में उसे कुछ भी पूर्वानुमान अथवा पूर्वज्ञान नहीं है। ऐसी अवस्था में ही वह उसमें कुछ नवीनता देख पाता है। यह नवीनता परिस्थितियों, कलाकार और समाज के पारम्परिक व्यवहार तथा कल्पना-प्रसूत आविष्कारों से सम्भव होती है।

अतः प्रयोगधर्मिता कला व समाज के हर क्षेत्र में निरन्तर व सदैव चलती रहती है कलाकार तथा कला रसिक समाज दोनों को मिलाकर ही कला-संस्कृति का स्वरूप बढ़ता तथा विकसित होता है। इसमें सृजन, प्रदर्शन और आस्वादन तीनों पक्ष होते हैं। आवश्यकता केवल यह ध्यान रखने की है कि इन तीनों पक्षों से सम्बन्धित प्रयोग औचित्य का सीमोल्लंघन न करे। प्रयोगों की कोई सीमा नहीं बाँधी जा सकती और न ही कल्पना तथा सृजन शक्ति के अजस्त्र स्रोत से समृद्ध कलाकारों को बाँधकर रखा जा सकता।

कला के क्षेत्र में आज कई प्रकार के प्रयोग हो रहे हैं, जिन्हें हम अनेक नामों से जानते हैं। यह प्रयोग हमारे परम्परागत अभ्यास एवं विधियों से पूर्णत भिन्न है, जिसके कारण इसे कुछेक शब्दों में बाँधना कठिन है। कला में कलाकारों द्वारा 'प्रयोग' करने की प्रवृति कलाकारों की सहज कियाओं में से एक है। जिस प्रकार अंगों का संचालन, किसी वस्तु अथवा सामग्री का प्रयोग, किसी कार्य को करने की विधि आदि में हमें जिन प्रकियाओं से होकर गुजरना होता है, वे सब प्रयोगाश्रित होती हैं। चूंकि मानव एक सामाजिक प्राणी है, जिसके कारण मानव की ये स्वाभाविक प्रवृत्ति रही है कि वह प्रकृति के रहस्यों को ढूंढते हुए उनको सुलझाते हुए निरन्तर प्रकृति से सीखते हुए एवं उससे प्रेरणा पाकर आगे बढ़ने का प्रयत्न किया है।

समकालीन कला में 'प्रयोग' की अवधारणा मानव जाति के विकास के समानान्तर चली आ रही है, लेकिन इसे गति मिली है, 19वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में। वैज्ञानिक आविष्कारों और मशीनी उद्योगों के आविर्भाव से समाज की संरचना में परिवर्तन हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि इससे कला भी बहुआयामी होती चली गयी और कला में प्रयोग करने की प्रवृति के नये-नये आयाम स्थापित होते चले गये। विश्व कला के महत्वपूर्ण केन्द्रों 'अमेरिका से लेकर यूरोप' तक में और साथ ही विकासशील देशों से लेकर विकसित देशों में 'प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ अपने चरम पर पहुँच गयीं। पाश्चात्य देशों से आये आधुनिक कला आन्दोलनों में 'प्रयोग' करने की प्रवृति ने न सिर्फ कला के बहरी स्वरूप को प्रभावित किया, बल्कि उसने कला के आन्तरिक पक्ष भाव और संवेदनाओं को भी पूरी तरह प्रभावित किया। यदि हम आधुनिक कला के मुख्य कलाकारों पिकासो, ब्राक, वान गॉ, हेनरी मुर, मुंच, बर्गसा आदि की कलाकृतियों पर दृष्टिपात करें तो इनकी कलाकृतियाँ आधुनिक कला या समकालीन कला में परिवर्तित हो रही गति का एहसास कराती हैं।

जब हम समकालीन चित्रकला की बात करते हैं तो सर्वप्रथम हमारे जेहन में आता है इसके द्वारा (समकालीन कला) चित्रकारों को प्रदान की गयी अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता। चाहे वह स्वतंत्रता विचारों की हो विषय-वस्तु की हो, माध्यम की हो, या तकनीक की। यह स्वतंत्रता ही प्रयोग करने की प्रवृत्ति को

बढ़ावा देती है। यदि समकालीन कला में कलाकारों द्वारा प्रयोग की गयी सामग्री एवं तकनीक की बात की तो माध्यमों की विविधता और कलाकृति का स्थायित्व दोनों ही महत्वपूर्ण हो जाता है। इसमें वैज्ञानिक कान्ति ने भी कलाकारों का खूब साथ दिया। जिससे उनका काम काफी हद तक आसान हो गया। विज्ञान ने कलाकारों को ऐसे उत्पाद दिये जिससे कलाकृतियों और उनमें प्रयुक्त रंगों को अधिक दिनों तक सुरक्षित रखना अब मुमकिन हो गया। इसके साथ ही साथ कलाकारों के पास बहुत सारे विकल्प मौजूद होने लगे, जिसके फलस्वरूप कला में प्रयोग करने की प्रवृति के प्रचलन को बढ़ाने के लिये कलाकारों ने कई तरह के प्रयोग किये। टेम्परा माध्यम या जलरंग के गुण से अलग तैल माध्यम की चमक ने कलाकारों को आकर्षित किया आौर धीरे-धीरे समय के हाथ यह कलाकार प्रिय माध्यम भी बन गया और जब कलाकार का माध्यम बदता तो इससे उनके प्रयोग करने की शैली में परिवर्तन के साथ वार्निशिंग तथा ग्लेजिंग का प्रचलन हुआ।

कलागत परिवर्तनों एवं वैज्ञानिकता ने कला की दशा एवं दिशा दोनों को प्रभावित किया। 'प्रभाववाद' आधुनिक कला का एक ऐसा क्रान्तिकारी आन्दोलन रहा, जहाँ से कला में 'प्रयोग' करने की प्रवृति का जन्म हुआ। जो कलाकारों को खुले आसमान के नीचे बैठकर 'सूर्य के प्रकाश' पर ध्यान देने के सिद्धान्त को प्रेषित किया। इस आन्दोलन से एक कदम आगे 'नेत्रीय कला' (ऑप ऑर्ट) भी कलाकारों की उच्च प्रयोगधर्मिता का ही उदाहरण है। जिसमें भविष्यवादी कलाकारों के सिद्धांतों (कलाकृति में गति प्रदर्शित करना) से आगे बढ़कर रंगों को इस प्रकार मिश्रित कर विषय-वस्तु को प्रसतुत किया जिससे दृष्टि को भ्रमित किया जा सके। समकालीन कला जिससे द्वारा काफी प्रोत्साहित किया जा रहा है। साथ ही साथ मूर्ति, चित्र, ग्राफिक, मोन्टाज, कोलाज आदि में भी इसका समन्वित रूप में प्रयोग होने लगा है। चूंकि कला में 'विशेष प्रयोगों' का प्रचलन आधुनिक कला के साथ ही हुआ। वर्तमान कला क्षेत्र में 'कम्प्यूटर कला' नवीन कला के रूप में प्रचलित हो रही है। इसने प्रयोगवादी कलाकारों को एक नयी सम्भावना दिखायी। कलाकारों ने भी उस विधा का प्रभावी उपयोग करना आरम्भ कर दिया है। समकालीन कला में हो रहे प्रयोगों के सन्दर्भ में कहा जा सकता है कि आज का कलाकार पुराने में से कुछ निकालने के लिये लालायित है। जिसके लिये वह अपने प्रत्येक कृति में कुछ नया (अलग) प्रयोग कर रहा है। आज कलाकार समय के गति के अनुसार अपनी कला आकृतियों, रंगों तथा धरातलों में भी इच्छानुसार परिवर्तन कर रहे हैं। आज उसके लिये कलाकृतियों में विकृति उत्पन्न करना मात्र अंगुलियों का खेल रह गया है।

भारतीय समकालीन कला में 20वीं शताब्दी कलागत रूप में बहुत महत्वपूर्ण रही। इस समय यहाँ कला साहित्य, धर्म, दर्शन, राजनीति, विज्ञान आदि में भी बहुत महत्वपूर्ण प्रयोग हुए। विज्ञान एवं मशीनीकरण ने कला जगत की विषय-वस्तु को बहुत प्रभावित किया। समसामयिक चित्रकला के तत्कालीन परिवेश में प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ चित्रकारों पर काफी हावी है, जो उनके कलाकृतियों में स्पष्ट नजर आती हैं। समकालीन कला में तेजी से बदलते सृजन के द्वंद। व्यक्तिगत इच्छा, रूचि एक-दूसरे से अलग हटकर अभिव्यक्ति करने की विशेषता तथा कला भाषा की मौलिकता ने कलाकार को यथार्थ के विपरीत अमूर्त चित्र रचना करने के लिये प्रेरित किया। तत्कालीन आधुनिक चित्रकला ने चित्रकारों को व्यक्तिगत अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता दी है तो यह भी सत्य है कि प्रत्येक चित्रकार एक ही तरह के विचारों पर

आधारित चित्र नहीं बना सकता और यहीं से चित्रकला में प्रयोगवाद आरम्भ हो गया। जिसके फलस्वरूप समकालीन कला में चित्र रचना की दो राहें दिखायी देने लगी। एक राह जो आकृति मूलक चित्र रचना की ओर चली तो दूसरी राह कला की ओर चली। आकृतिमूलक ने यथार्थ जगत में होने वाली घटनाओं का यथार्थ (हू बहू) चित्रण करने के लिये आकृति मूलक चित्र बनाये। जिसमें लोक कला, दृश्य चित्रण, फोटोग्राफी, वस्तु चित्रण को सृजन का आधार बनाकर हू बहू चित्रण किया गया। इन आकृतिमूलक चित्रकारों में एन. एस. बेन्द्रे, ए. रामचन्द्रन, भूपेन खक्कर, बी. सी. सान्याल, परितोष सेन, जगदीश डे आदि चित्रकार प्रमुख हैं। ये ऐसे चित्रकार हैं जिनकी कला में हमें उनकी व्यक्तिगत रूचि की झलक के साथ-साथ सामाजिक जीवन की झलकियाँ भी देखने को मिलती हैं। ये कलाकार सदैव ही समाज के प्रति गम्भीर थे तथा समाज के प्रति अपने दायित्वों को गम्भीरता पूर्वक समझते थे, किन्तु ये कलाकार भी समय के साथ-साथ नई शौलियों को अपनाये। एन. एस. बेन्द्रे, ने दृश्यचित्रण, तैल और गोच शैली को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया और साथ ही वर्गाकृतियों, छायावाद और अमूर्त क्षेत्र में भी अनेक प्रयोग किये। परितोष सेन आधुनिक भारतीय कला के ऐसे कलाकार हैं जिनकी कला में हमें भारत की पारम्परिक विरासत से लेकर आधुनिकता के तत्वों का पूर्ण रूप से समन्वय दिखता है। उनके चित्रों में हमें पारम्परिक भारतीय लोक तत्वों (बंगाल की सशक्त लोंक परम्परा, कालीघाट पेंटिग के बोल्ड रंग, उसके लोक मुहावरे), पाशचात्य कलाकारों वॉन गॉग, पिकासों, डी. कूनिंग, जैक्सन पोलाक का भी प्रभाव दिखायी देता है। हालांकि बीच में अमूर्तन के करीब भी जाते दिखते है। इनकी कला में हमें विविधतायें दिखती हैं। अपर्णा कौर भी 21वीं सदी की एक ऐसी चित्रकार हैं जो सामाजिक परिस्थितियों और कुरीतियों को चित्रांकित करने के लिये जानी जाती हैं। इन्होंने अपने चित्रों के विषय-वस्तु में जीवन के छोटे-छोटे पहलुओ का, काल्पनिक कथाओं को और धार्मिकता को मुख्य रूप से जगह दी है। जिसमें इन्होंने अति प्रिय रंगों गॉच, जलरंग तैलरंग, एक्रेलिक तथा चारकोल आदि माध्यमों द्वारा भावाभिव्यक्ति की है। इसी प्रकार गोगी सरोज पाल ने भी गॉच तैलरंग, कढ़ाई इत्यादि माध्यमों का प्रयोग करते हुए महिला को अपने चित्रण का मुख्य विषय बनाया। इन्होंने स्त्री की वास्ततिक स्थिति को दर्शाने एवं उसके यथार्थ भावों को दिखाने के लिये प्रयोगात्मक ढंग से कपड़े और रंगों का प्रयोग कैनवस पर किया है।

जबकि इसके विपरीत अमूर्तनवादी चित्रकार रहे, जो परम्परा व धर्म के बन्धन से मुक्त होकर चित्रण में स्वतंत्र अभिव्यक्ति करने की चाह रखते थे। सन् 1908 में फ्रासिस पिकेबिया ने सर्वप्रथम गैर-आकृतिमूलक तैल चित्र बनाया। सन् 1910 में कांडेन्सकी ने ऐसा प्रथम अमूर्त चित्र की रचना की जो यथार्थ से सम्बन्धित माना जा सकता है और उससे परे भी। अमूर्तनवादी जैक्सन पोलाक् क्लाइन मार्क रोथोको जैसे चित्रकारो से प्रभावित होकर अनेक भारतीय चित्रकारो ने भी अमूर्तन की राह पकड़ी। जिनमें मुख्य रूप से गायतोंडें, जे. राम पटेल, अम्बादास, कृष्णा रेड्डी आदि रहे हैं। जिन्होंने समकालीन कला में न केवल नये-नये प्रयोग किये, बल्कि अपने चित्रों को विशेष प्रकार से अंकित करके उन्हें सरल एवं व्यवस्थित स्वरूप भी प्रदान किया। रंगो एवं आकारों को चित्राकृति का आधार बनाकर अपनी भावनाओं की अभिव्यक्ति वस्तु निरपेक्ष चित्रों की रचना द्वारा की। अमूर्तवादी कला में ही एक राह तांत्रिक कलाकारों की रही। जिसमें जी. आर. संतोष, वीरेन डे, के. सी. एस. पणिक्कर, गणेश पाइन आदि प्रमुख है। आरम्भ में नव तांत्रिक कला के विषय-वस्तु विवाद के विषय भी बने। किन्तु जी.आर. संतोष ऐसे

कलाकार थे जो इन विवादों से दूर तांत्रिक चित्राकृतियाँ बनाते रहें। क्योंकि उन्होंने प्राचीन भारतीय कश्मीरी तंत्र-मंत्र का अध्ययन कर उसको आत्मसात कर लिया था। वह तंत्र के दार्शनिक व वैचारिक सन्दर्भ को यथावत् समझते थे। इस प्रकार आकृति मूलक चित्र में जहाँ यथार्थ दृश्यकी छायाकृति या प्रतिबिम्ब मात्र रही है, तो वहीं अमूर्त कला में कलाकार की व्यक्तिगत अभिव्यक्ति प्रतीकों, धार्मिक प्रतीकों, अक्षरों, रंग, तंत्र-मंत्र इत्यादि तत्वों से होती रही है।

हालांकि आज कला कला बाजार कलाकृतियों तथा कलाकारों की गुणवता निर्धारित करने का एक महत्वपूर्ण कारक बन गया है। समकालीन कलाकृतियों द्वारा की जा रही प्रयोगवादिता में कला बाजार अहम भूमिका निभा रहा है। यह किसी भी चित्राकृति एवं चित्रकार को विश्व स्तर पर पहुँचाने का माध्यम है। यदि आज भारतीय कलाओं या लोक कलाओं को विश्व स्तर पर पहचान मिली है तो उसका श्रेय अमुक कलाकार के साथ-साथ कला बाजार को ही है। हालांकि इसके दोनो पक्ष सकारात्मक एवं नकारात्मक बहुत अहम हो गये हैं। एक और तो यह कलाकार को आर्थिक रूप से सम्पन्न बना रहा है तो दूसरी तरफ इसके कारण कलाकृतियों में विकृतियाँ भी आने लगी है, जो किसी कलाकृति के सृजन से लेकर, उसके भाव, संवेदना तक में दिखायी देने लगी है। आज का कलाकार बाजार में कलाकृति की बिक्री की झोंक में तत्कालिकता को अपनाने लगा है। साथ ही साथ वह बाजार के मांग के अनुरूप भी अपनी पसंद से समझौता करने लग गया है। आज कला बाजार का प्रभाव कला पर भारी पड़ने लगा है, जो चिन्ता का विषय है।

कलाकारों की यही 'प्रयोगवादी प्रवृत्तियाँ वर्तमान में पारम्परिक लोक कलाओं में दिखायी देने लगी है। जिसमें कलाकार अपने विषय-वस्तु तो पारम्परिक कलाओं से चुन रहे है किन्तु शैली, माध्यम, पद्धति, प्रतिधिं अपने स्वभाव के अनुकूल चुन रहें हैं। अगर इसे सकारात्मक रूप में लिया जायें तो यह वह कारक है, जिसके फलस्वरूप आज भी परम्परिक कलाऐं हमारें सामने हैं, जो शायद एक वक्त पर खत्म होने के कागार पर पहुँच गयी थीं। इसलिये यह कहा जा सकता है कि कलाकारों की प्रयोगवादी प्रवृत्तियों से कहीं ना कहीं हमारी प्राचीन परम्पराओं को नवजीवन मिलता है तथा सभ्यता के विकास के प्रत्येक चरण में परम्परा तथा प्रयोग दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं।

निष्कर्ष

इस प्रकार कला मानव जीवन की नवीनताओं, समसामयिक तकनीक से समृद्ध गहन संवेदनाओं तथा वैचारिक शक्ति के साथ जीवन को समझने का प्रयास है। जिस प्रकार हमें मानव जीवन एवं परम्पराओं में बदलाव दिखाई देता है उसी प्रकार समसामयिक कला में भी बदलाव लाना आवश्यक है। आज कम्प्यूटर एवं मशीनी युग है। हर क्षेत्र में तेज रफ़्तार की आवश्यकता है तो कला भी इससे अछूती क्यूं रहे। अतः आज के कलाकार को अत्यधिक कल्पनाशील एवं प्रयोगशील रहना चाहिए।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 ए.एल. दमामी, अमूर्त विशेषांक आकृति 1995, राज. ललित कला अकादमी, पृ.सं. 53, 55

2 शैफाली भटनागर, कला में यथार्थ अमूर्तन कला दीर्घा अक्टूबर, 2000, पृष्ठ 31, 32

3 लोकेश चंद्र शर्मा, भारत की चित्रकला का संक्षिप्त इतिहास, 2006, गोयल पब्लिशिंग हाउस मेरठ पृष्ठ 153

4 डॉ. माता प्रसाद शर्मा, कला शिक्षा 2016, कविता प्रकाशन जयपुर, पृष्ठ 30, 31

5 प्रेमचंद गोस्वामी, भारतीय कला के विविध स्वरूप, 1996, पंचशील प्रकाशन

6 डॉ. सविता नागर, कला संस्कृति में प्रयोगधर्मिता के नये आयाम 2004, मेरठ, पृष्ठ 6

7 डॉ. अवधेश मिश्र, कला दीर्घा, अप्रैल 2004, पृष्ठ 14

8 परितोष सेन, प्रयोगधर्मिता और साक्ष्य की आत्मा, समकालीन कला 2007, ल.क.अ. नई दिल्ली पृष्ठ 34